CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

2008-2022

15वर्ष हल प्रश्न-पत्र
सिविल सेवा मुख्य परीक्षा

दर्शनशास्त्र

प्रश्नोत्तर रूप में

सिविल सेवा परीक्षा के पाठ्यक्रम पर आधारित

15 वर्ष (2008-2022)

अध्यायवार मुख्य परीक्षा हल प्रश्न-पत्र

दर्शनशास्त्र

प्रश्नोत्तर रूप में

सिविल सेवा परीक्षा के लिए

संघ एवं राज्य लोक सेवा आयोग तथा अन्य समकक्ष प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए समान रूप से उपयोगी

संपादकः एन. एन. ओझा
(सिविल सेवा परीक्षाओं के मार्गदर्शन में 30 से अधिक वर्षों का अनुभव)
लेखन एवं प्रस्तुतिः क्रॉनिकल संपादकीय समूह

CHRONICLE
Nurturing Talent Since 1990

पुस्तक के संबंध में

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के नवीनतम पाठ्यक्रम पर आधारित विगत 15 वर्षों (2008-2022) के प्रश्नों का अध्यायवार हल

पुस्तक के मूल्य को पाठकों के पहुंच तक बनाए रखने तथा पृष्ठ संख्या को सीमित रखने हेतु पूर्व के दो वर्षों (2006-2007) के प्रश्नों को पुस्तक से हटाया जा रहा है। यह सामग्री chronicleindia.in पर पाठकों के लिए निःशुल्क उपलब्ध होगी।

प्रश्नों को हल करने की प्रकृतिः पुस्तक में प्रश्नों के उत्तर को मॉडल हल के रूप में दिया गया है। प्रश्नों को हल करते समय इस बात का ध्यान रखा गया है कि उत्तर सारगर्भित हो तथा पूछे गए प्रश्नों के अनुरूप हों। पुस्तक में प्रश्नों के इतर भी विशिष्ट जानकारी को उत्तर में समाहित किया गया है, ताकि अभ्यर्थी इसका उपयोग न सिर्फ हल प्रश्न पत्र के रूप में, बल्कि अध्ययन सामग्री के रूप में भी कर सकें।

पुस्तक का उपयोग कैसे करें?: इस पुस्तक का उपयोग अभ्यर्थी अपने उत्तर लेखन शैली में सुधार लाने तथा प्रश्नों की प्रवृत्ति व प्रकृति को समझने के लिये कर सकते हैं। किसी भी परीक्षा के विगत वर्षों के प्रश्न इसमें सबसे लाभदायक होते हैं। पुस्तक में दी गई सामग्री का इस्तेमाल बिंदुवार, निश्चित शब्द सीमा का पालन, उप-शीर्षक एवं आरेख आदि का प्रयोग अभ्यर्थी अपने उत्तर लेखन शैली के अभ्यास हेतु आधुनिक परिपेक्ष में कर सकते हैं। पुस्तक में प्रश्नों के उत्तर उसके सम्बंधित वर्ष के अनुसार ही दिया गया है।

दर्शनशास्त्र-एक वैकल्पिक विषय के रूप में: दर्शनशास्त्र, हिंदी माध्यम के विद्यार्थियों के लिए काफी लोकप्रिय वैकल्पिक विषय रहा है। वैसे छात्र जिन्हें दर्शन में और साहित्यिक-सामाजिक समस्याओं के गहन अनुशीलन, चिंतन एवं समाधान खोजने में रुचि है तथा जिनकी भाषा पर अच्छी पकड़ है, वे इस विषय का चयन कर सकते हैं। संघ लोक सेवा आयोग के नवीनतम पाठ्यक्रम के अनुसार दर्शनशास्त्र सामान्य अध्ययन के प्रश्न-पत्र 4 के लिए उपयोगी है। साथ ही निबंध के प्रश्न पत्र के लिए इसकी प्रासंगिकता और उपयोगिता को देखते हुए इसका वैकल्पिक विषय के रूप में महत्त्व और भी बढ़ गया है। वैसे छात्र, जिनके पास तार्किक योग्यता है, वे दर्शनशास्त्र का चयन कर सकते हैं। इस विषय का पाठ्यक्रम छोटा है और तकनीकी शब्द ज्यादा है; जिसके लिए गहरी समझ होनी आवश्यक है; ताकि एक संकल्पना को दूसरी से जोड़ा जा सके।

यह पुस्तक छात्रों को संघ लोक सेवा आयोग मुख्य परीक्षा के आलावा राज्य लोक सेवा आयोगों (उत्तर प्रदेश, बिहार, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश एवं झारखण्ड) के बदले हुए पाठ्यक्रम में आयोजित होने वाले सिविल सेवा मुख्य परीक्षा के दर्शनशास्त्र के प्रश्न पत्र में उपयोगी साबित होगा।

संपादक

अनुक्रमणिका

विषयवार हल प्रश्न-पत्र 2008-2022

प्रथम प्रश्न-पत्र

दर्शन का इतिहास एवं समस्याएं

1. **प्लेटो एवं अरस्तू** 01-11
   प्रत्यय, द्रव्य, आकार एवं पुद्गल, कार्यकारण भाव, वास्तविकता एवं शक्यता

2. **तर्कबुद्धिवाद (देकार्त, स्पिनोजा, लाइबनिज)** .. 12-26
   देकार्त की पद्धति एवं असंदिग्ध ज्ञान, द्रव्य, परमात्मा, मन-शरीर द्वैतवाद, नियतत्ववाद एवं स्वातंत्र्य

3. **इंद्रियानुभववाद (लॉक, बर्कले, ह्यूम)** 27-38
   ज्ञान का सिद्धांत, द्रव्य एवं गुण, आत्मा एवं परमात्मा संशयवाद

4. **कांट: संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभाव्यता** 39-47
   दिक् एवं काल, पदार्थ, तर्कबुद्धि प्रत्यय विप्रतिषेधा परमात्मा के अस्तित्व के प्रमाणों की मीमांसा

5. **हीगल** 48-51
   द्वंद्वात्मक प्रणाली, परमप्रत्ययवाद

6. **मूर, रसेल एवं पूर्ववर्ती विट्गेन्सटीन** 52-61
   सामान्य बुद्धि का मंडन, प्रत्ययवाद का खंडन, तार्किक परमाणुवाद, तार्किक रचना, अपूर्ण प्रतीक, अर्थ का चित्र सिद्धांत, उक्ति एवं प्रदर्शन

7. **तार्किक प्रत्यक्षवाद** 62-67
   अर्थ का सत्यापन सिद्धांत, तत्वमीमांसा का अस्वीकार, अनिवार्य प्रतिज्ञप्ति का भाषिक सिद्धांत

8. **उत्तरवर्ती विट्वेंस्टीन** 68-75
   अर्थ एवं प्रयोग; भाषा-खेल: व्यक्ति भाषा की मीमांसा

9. **संवृतिशास्त्र (हर्सल)** 76-81
   प्रणाली, सार सिद्धांत, मनोविज्ञानपरता का परिहार

10. **अस्तित्वपरकतावाद (कीर्कगार्द, सार्त्र, हीडेगर)** 82-92
    अस्तित्व एवं सार, वरण, उत्तरदायित्व एवं प्रामाणिक अस्तित्व, विश्वनिसत् एवं कालसत्ता

11. **क्वाइन एवं स्ट्रासन** 93-101
    इंद्रियानुभववाद की मीमांसा, मूल विशिष्ट एवं व्यक्ति का सिद्धांत

12. **चार्वाक** 102-110
    ज्ञान का सिद्धांत, अतींद्रिय सत्वों का अस्वीकार

13. **जैन दर्शन** 111-120
    सत्ता का सिद्धांत, सप्तभंगी न्याय, बंधन एवं मुक्ति

14. **बौद्ध दर्शन** 121-137
    प्रतीत्यसमुत्पाद, क्षणिकवाद, नैरात्म्यवाद

15. **न्याय-वैशेषिक** 138-153
    पदार्थ सिद्धांत, आभास सिद्धांत, प्रमाण सिद्धांत, आत्मा, मुक्ति, परमात्मा, परमात्मा अस्तित्व के प्रमाण, कार्यकारण-भाव का सिद्धांत, सृष्टि का परमाणुवादी सिद्धांत

16. **सांख्य दर्शन** 154-165
    प्रकृति, पुरुष, कार्यकारण-भाव, मुक्ति, योग: चित्त, चित्तवृत्ति, क्लेष, समाधि कैवल्य

17. **योग** 166-170
    चित्त; चित्तवृत्ति; क्लेश; समाधि; कैवल्य

18. **मीमांसा** 171-178
    ज्ञान का सिद्धांत

19. **वेदांत संप्रदाय** 179-195
    ब्रह्म, ईश्वर, आत्मन, जीव, जगत, माया, अविद्या, अध्यास, मोक्ष, अपृथक सिद्धि, पंचविधाभेद, अरविंद: विकास, प्रतिविकास, पूर्णयोग

20. **अरविंद** 196-202
    विकास, प्रतिविकास, पूर्ण योग।

द्वितीय प्रश्न-पत्र

सामाजिक-राजनैतिक दर्शन

1. **सामाजिक एवं राजनैतिक आदर्श** 203-213
   समानता, न्याय, स्वतंत्रता
2. **प्रभुसत्ता** 214-221
   आस्टिन, बोदाँ, लास्की, कौटिल्य
3. **व्यक्ति एवं राज्य** 222-231
   अधिकार, कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्व
4. **शासन के प्रकार** 232-242
   राजतंत्र, धर्मतंत्र एवं लोकतंत्र
5. **राजनैतिक विचारधाराएं** 243-255
   अराजकतावाद, मार्क्सवाद एवं समाजवाद
6. **मानववाद** 256-271
   धर्मनिरपेक्षतावाद, बहुसंस्कृतिवाद
7. **अपराध एवं दंड** 272-282
   भ्रष्टाचार, व्यापक हिंसा, जातिसंहार, प्राणदंड
8. **विकास एवं सामाजिक उन्नति** 283-284
9. **लिंग भेद** 285-297
   स्त्री भ्रूण हत्या, भूमि एवं संपत्ति अधिकार, सशक्तिकरण
10. **जाति भेद : गांधी एवं अंबेडकर** 298-301
    गांधी एवं अंबेडकर

धर्म दर्शन

1. **ईश्वर की धारणा** 302-306
   गुण, मनुष्य एवं विश्व से संबंध (भारतीय एवं पाश्चात्य)
2. **ईश्वर के अस्तित्व के प्रमाण और उसकी मीमांसा** 307-326
   भारतीय एवं पाश्चात्य
3. **अशुभ की समस्या** 327-332
4. **आत्मा** 333-344
   अमरता, पुनर्जन्म एवं मुक्ति
5. **तर्कबुद्धि, श्रुति एवं आस्था** 345-352
6. **धार्मिक अनुभव** 353-359
   प्रकृति एवं वस्तु (भारतीय एवं पाश्चात्य)
7. **ईश्वर रहित धर्म** 360-364
8. **धर्म एवं नैतिकता** 365-381
   धार्मिक शुचिता एवं परम सत्यता की समस्या
9. **धार्मिक शुचिता एवं परम सत्यता की समस्या** 382-383
10. **धार्मिक भाषा की प्रकृति** 384-394
    सादृश्यमूलक एवं प्रतीकात्मक, संज्ञानवादी एवं निस्संज्ञानवादी

प्रथम प्रश्न-पत्र

दर्शन का इतिहास एवं समस्याएं

1

प्लेटो एवं अरस्तू

प्र. ज्ञानमीमांसा एवं तत्त्वमीमांसा के बीच संबंध की स्थापना हेतु प्लेटो किस प्रकार आकार सिद्धांत का उपयोग करते हैं? विवेचना कीजिये। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: आकार सिद्धांत प्लेटो के दर्शन का केन्द्र बिन्दु है। आकार सिद्धांत के अनुसार ज्ञान के वास्तविक विषय आकार है। ज्ञान अपरिवर्तनशील और सार्वभौमिक होता है। परिवर्तनशील प्रत्यक्ष जगत की वस्तुओं को ज्ञान का वास्तविक विषय नहीं माना जा सकता। ज्ञान का विषय नित्य एवं अपरिवर्तनशील सत्ता हो सकती है। प्लेटो के अनुसार यह नित्य एवं अपरिवर्तनशील सत्ता 'सामान्य' है जिसे यहां 'आकार' कहा गया गया है। इन आकारों की दृश्य वस्तु जगत से परे अपनी स्वतंत्र एवं निजी सत्ता है।

प्लेटो दो प्रकार के जगत की स्थिति को स्वीकार करते हैं-

(i) दृश्य जगत या वस्तु जगत, जो कि अनित्य एवं परिवर्तनशील है।

(ii) आकारों का जगत, जो कि वास्तविक जगत है। प्लेटो के अनुसार प्रत्यय जगत और प्रत्यक्ष जगत में निम्न अंतर है-

प्रत्यय जगत	प्रत्यक्ष जगत
सत्	आभास
नित्य	अनित्य
अपरिवर्तनशील	परिवर्तनशील
चित्त रूप	जड़ात्मक
सामान्य	विशेष
निरपेक्ष	सापेक्ष
मूलतत्व	अनुकृति
पूर्ण	अपूर्ण
बुद्धिग्राह्य	इन्द्रियग्राह्य

प्लेटो प्रत्यक्ष-जगत प्रत्यय जगत के संबंध को स्पष्ट करने के लिए दो प्रकार की उपमाओं का प्रयोग करते हैं।

1) **प्रतिबिम्बवादया अनुकृति सिद्धांत:** इसके अनुसार प्रत्येक जगत की वस्तुएं प्रत्यय जगत की अनुकृतियां हैं। प्लेटो इसी कारण प्रत्यक्ष जगत की वस्तुओं को अंशत: सत् और अंशत: असत् कहते हैं।

2) **सहभागिता सिद्धांत:** इसके अनुसार प्रत्यक्ष जगत की वस्तुएं प्रत्यय जगत में सहभागी होती हैं। प्लेटो के अनुसार, विश्व में जितने प्रकार की वस्तुएं हैं, पारमार्थिक जगत में उतने ही प्रकार के प्रत्यय हैं।

प्लेटो कालान्तर में यह मानते हैं कि संपूर्ण जगत प्रत्यय जगत की अभिव्यक्ति मात्र है। यह अभिव्यक्ति अपूर्ण अभिव्यक्ति है।

प्लेटों ज्ञान के संदर्भ में अपनी पूर्ववर्ती मान्यताओं एवं सिद्धांतों का खण्डन करते हैं और तत्पश्चात वे इस बात की स्थापना करते हैं कि ज्ञान प्रत्ययों द्वारा ही प्राप्त होता है। वस्तुत: प्लेटो के दर्शन में प्रत्ययों का सिद्धांत उनके दर्शन का केन्द्र है। परन्तु इनकी व्याख्या करने के लिए प्लेटो की ज्ञान मीमांसा को दो भागों में बांटा जाता है:

1) **नकारात्मक पक्ष:** नकारात्मक पक्ष में दो सिद्धांतों का खण्डन करते हैं- (i) ज्ञान प्रत्यक्ष है, (ii) ज्ञान मत है।

2) **स्वीकारात्मक पक्ष:** यह पक्ष प्रत्यक्ष सिद्धांत से संबंधित है।

प्लेटो के प्रभाव को निम्न दार्शनिक परंपराओं में देख सकते हैं-

बुद्धिवाद: प्लेटो के अनुसार अनुभव से हमे लौकिक जगत की परिवर्तनशील वस्तुओं का ज्ञान प्राप्त होता है।

वस्तुवाद: प्लेटो के दर्शन में वास्तविक ज्ञान के विषय अर्थात प्रत्ययों की ज्ञाता से पृथक अपनी स्वतंत्र वस्तुगत सत्ता मानी गई है।

आदर्शवाद: परम तत्व प्रत्यय हैं। लौकिक जगत की वस्तुएं इनकी अनुकृति या अपूर्ण अभिव्यक्तियां हैं।

प्रपंचवाद: प्लेटो के अनुसार प्रत्यय ही सत् है, लौकिक जगत की वस्तुएं प्रत्यय जगत का आभास, प्रपंच है।

द्वैतवाद: द्वैतवाद की समस्या प्लेटो के दर्शन में दिखाई देती है। यहां जड़ जगत एवं प्रत्यय जगत के बीच द्वैत है।

प्र. क्या अरस्तू का तादात्म्य के स्वरूप सम्बन्धी मत उनके इस मत से साम्यता रखता है कि कारण प्रक्रियानुगत है? उचित उदाहरण देते हुए व्याख्या कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: विश्व की सम्यक रूपेण व्याख्या करने के लिए अरस्तू कारणता सिद्धांत को प्रस्तुत करते हैं। इसके द्वारा वे वैश्विक पदार्थों के अस्तित्व, उत्पत्ति, उद्देश्य एवं औचित्य की व्याख्या करते हैं। उन्होंने कारणता के अन्तर्गत भौतिक कारणों के साथ-साथ प्रयोजनमूलक कारण को भी सम्मिलित किया है। अरस्तू के अनुसार प्रत्येक वस्तु या घटना के चार कारण होते हैं। ये कारण वैकल्पिक नहीं है, अपितु वस्तु इन चार कारणों का संयुक्त परिणाम होती है। ये चार कारण हैं-

1. **उपादान कारण :** कार्य का निर्माण किससे हुआ है।
2. **निमित्त कारण :** किसने कार्य क्या है।

2

तर्कबुद्धिवाद

प्र. स्पिनोजा के अनुसार द्रव्य की अवधारणा का विवेचन कीजिये। द्रव्य सम्बन्धी उनकी विवेचना क्या सर्वेश्वरवाद की ओर ले जाती है? अपने मत की पुष्टि कीजिये।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: द्रव्य विचार स्पिनोजा के दर्शन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचार है। स्पिनोजा के अनुसार "द्रव्य वह है, जो अपने में ही निहित है और उसके चिंतन के लिए किसी अन्य वस्तु के चिंतन की अपेक्षा न हो।"

स्पिनोजा द्वारा दी गई द्रव्य की इस परिभाषा से द्रव्य के निम्न लक्षण निकलते हैं-

i) द्रव्य स्वतंत्र है। वह अपनी सत्ता या ज्ञान के लिए किसी अन्य पर निर्भर नहीं है।

ii) द्रव्य निरपेक्ष है। वह अपनी सत्ता या ज्ञान के लिए किसी अन्य की अपेक्षा नहीं रखता।

iii) द्रव्य पूर्ण है। यदि द्रव्य को अपूर्ण माना जाये तो फिर द्रव्य की स्वतंत्रता और निरपेक्षता खण्डित होगी।

iv) द्रव्य अद्वितीय है। यदि द्रव्य को एक से अधिक माना जाये तो उसकी स्वतंत्रता और निरपेक्षता पर आघात होगा।

v) द्रव्य अपरिमित है, अर्थात वह न तो सीमित है और न किसी पर आश्रित।

vi) द्रव्य स्वत: सिद्ध और स्वयं प्रकाशित है।

vii) द्रव्य स्वयंभू है। द्रव्य स्वयं अपना कारण है। वह सबका कारण है, परन्तु उसका कोई कारण नहीं है।

viii) द्रव्य नित्य है।

- द्रव्य निर्गुण एवं अवर्णनीय है। यहां निगुर्ण का तात्पर्य गुणों के अभाव से नहीं है। द्रव्य के भीतर अनन्त गुण हैं और वे सभी गुणों की पराकाष्ठा को इंगित करते हैं। अंत:निर्गुण का वास्तविक अर्थ गुणों के अभाव से नहीं है, अपितु द्रव्य में सीमित गुणों के अभाव से है।
- निर्गुण होने के कारण द्रव्य अवर्णनीय हैं। वाणी द्वारा ऐसे असीमित गुण का विवेचन संभव नहीं है।
- स्पिनोजा के अनुसार द्रव्य का प्रत्येक गुण निषेधात्मक होता है। द्रव्य पर यदि किसी गुण का आरोपण किया जाये तो वह इसे अनेक गुणों से सीमित कर देगा। अत: द्रव्य में निर्धारण नहीं है। उनके शब्दों में सभी निर्धारण निषेध हैं। उपरोक्त प्रकार के लक्षणों से युक्त द्रव्य ईश्वर ही हो सकता है। इसलिए स्पिनोजा अपने द्रव्य को ईश्वर की संज्ञा देते हैं।
- स्पिनोजा के अनुसार, ईश्वर या द्रव्य एक पूर्णत: स्वतंत्र असमी और स्वयंभू सत्ता है। द्रव्य की परिभाषा देते हुए स्पिनोजा ने कहा है- "द्रव्य वह है, जो आत्मनिहित हो और जिसका बोध अपने आप से होता हो।" स्पिनोजा ने द्रव्य को ही ईश्वर कहा है।
- द्रव्य की परिभाषा से स्पष्ट है कि उसका स्वरूप ऐसा है कि इसे अपने अस्तित्व के लिए किसी दूसरे पदार्थ की अपेक्षा नहीं है लेकिन अन्य सभी चीजें द्रव्य या ईश्वर पर निर्भर हैं। ईश्वर ही एकमात्र निरपेक्ष सत्ता है, सबका मूलाधार है। चूकि अंतिम रूप से केवल ईश्वर की ही सत्ता है, इसलिए जिस किसी भी चीज की सत्ता है, वह ईश्वर ही है। ईश्वर और सत्ता समव्यापी हैं। संपूर्ण सत्ता ईश्वर है और ईश्वर ही संपूर्ण सत्ता है। इसलिए स्पिनोजा का मत 'सर्वेश्वरवाद' कहलाता है।
- स्पिनोजा के ईश्वर के साथ विश्व का संबंध तादात्म्यमूलक ही हो सकता है। ईश्वर संपूर्ण सत्ता है और विश्व को भी संपूर्ण सत्ता का द्योतक माना जाता है। अत: ईश्वर और विश्व अलग-अलग नहीं है। दोनों अभिन्न हैं। ईश्वर पूर्णत: विश्वव्यापी है और विश्व पूर्णत: ईश्वराधीन है (All is God and God is All)।
- स्पिनोजा के मत में ईश्वर ही विश्व का कारण है, परंतु ईश्वर अंतर्यामी कारण है, दूरस्थ कारण नहीं। ईश्वर जगत की सृष्टि अपने से भिन्न और स्वतंत्र रूप से नहीं करता। ईश्वर विश्व का अंतर्निहित कारण है।
- अब यदि हम ईश्वर को सक्रिय अंतर्यामी कारण समझें, जिससे कि विश्व का प्रतिक्षण पालन होता है तो इस रूप में स्पिनोजा ने ईश्वर को 'नुचुरा नेचुरन्स' कहा है। फिर यदि हम ईश्वर को विश्व की वस्तुओं की समग्रता या कार्यरूप में देखें तो ईश्वर को स्पिनोजा ने 'नेचुरेटा' कहा है।
- स्पिनोजा का ईश्वर व्यक्तिरहित हैं, क्योंकि व्यक्तित्व का आरोपण करने पर वह सीमित हो जायेगा और सीमित होने पर इसका ऐश्वर्य समाप्त हो जायेगा। व्यक्तित्व का अभाव होने से इसमें इच्छा और प्रयोजन का आरोप भी नहीं किया जा सकता।
- इसलिए ईश्वर से विश्व की उत्पत्ति भी प्रयोजनपूर्ण नहीं है, बल्कि ईश्वर की प्रकृति का स्वभाविक और निवार्य परिणाम है। विश्व का कण-कण ईश्वरमय है। इसलिए काल-सापेक्ष सृष्टि स्पिनोजा को स्वीकार्य नहीं है। ईश्वर का विश्व से काल-निरपेक्ष शाश्वत संबंध है।

3

इंद्रियानुभववाद

प्र. जॉन लॉक जन्मजात प्रत्ययों का खण्डन क्यों और कैसे करते हैं? लॉक की ज्ञानमीमांसा में ज्ञान के स्वरूप एवं स्रोत का निरुपण कीजिये। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: लॉक अनुभववादी है, उनके अनुसार अनुभव ही ज्ञान का एकमात्र यथार्थ स्रोत है। मनुष्य के ज्ञान कोष में जो कुछ भी है, वह सब अनुभवजन्य है। ज्ञान की उत्पत्ति संबंधी लॉक का यह मत सहजज्ञानवाद के विरुद्ध है। लॉक अनुभववाद की स्थापना के क्रम में पहले बुद्धिवादियों की जन्मजात प्रत्यय संबंधी अवधारणा का खण्डन करते हैं। लॉक ने सहजात प्रत्ययों से उन प्रत्ययों का अर्थ लगाया है, जिनके विषय से यह मत था कि वे ईश्वर प्रदत्त हैं और सभी लोगों में जन्म के समय से पाये जाते हैं।

- लॉक बुद्धिवादियों की इस मान्यता का खण्डन करते हैं, इस संबंध में उनके तर्क निम्नवत् हैं-
- लॉक के अनुसार हम ज्ञान के दो ऐसे वर्ग पाते हैं जिन्हें बुद्धिवादी सहजात या जन्मजात समझते हैं-

(i) स्वत: स्पष्ट तार्किक सिद्धांत,

(ii) नैतिक नियम।

सहज ज्ञानवादियों का तर्क है कि इन्हें अनिवार्य एवं सार्वभौमिक रूप से सत्य माना जाता है, इसलिए यह सहजात है। लॉक का मुख्य तर्क है कि कोई भी प्रत्यय शायद ही जन्मजात और सार्वभौम मान भी लिया जाये तो सार्वभौमिकता की व्याख्या सहजात होने के आधार पर नहीं बल्कि, अनुभव के सहारे ही हो सकती है।

1. तर्कशास्त्र के सिद्धांत जैसे आत्मव्याघात तथा तादात्म्य के निमय, प्रशिक्षित और परिपक्व मस्तिष्क के लिए स्वत: स्पष्ट होते हैं। परन्तु छोटे बच्चों और मंद बुद्धि वालों के लिए ये **सिद्धांत** अबोधगम्य होते हैं। वास्तव में ये सिद्धांत इतने जटिल है कि जन्मजात नहीं होकर प्रौढ़ावस्था में अनुभव विस्तार के साथ-साथ गहन चिंतन के फलस्वरूप प्राप्त होते हैं।
2. नैतिक और धार्मिक प्रत्ययों की तथाकथित सार्वभौम मतैक्यता को भी लॉक अस्वीकार करते हैं। कोई भी ऐसा नैतिक नियम नहीं हैं। जो सभी देश और सभी काल में समान रूप से सत्य माने जाते हैं। विभिन्न धर्मों के ईश्वर संबंधी प्रत्यय भी समरूप नहीं है। कई जातियां और धर्म ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते हैं।
3. कुछ प्रत्यय वास्तव में सार्वभौमिक हैं, पर उन्हें सहज नहीं समझा जाता। उदाहरण: सूर्य, अग्नि, ताप इत्यादि के प्रत्यय सभी लोगों में हैं। परन्तु इनकी अनुभव सापेक्षता इतनी स्पष्ट है कि उन्हें सहजात नहीं माना जा सकता।
4. सहजज्ञानवादी यह तर्क भी दे सकते हैं कि सहजात प्रत्यय तो मानव मन में जन्म के समय से ही विद्यमान रहते हैं, परन्तु कालान्तर में वे स्पष्ट हो जाते हैं।

इसके विरुद्ध लॉक का तर्क है कि कोई प्रत्यय मन में रहे और फिर भी लोग इससे अनभिज्ञ रहें, यह एक आत्मविरोधी बात है।

लॉक की ज्ञानमीमांसा में तीन प्रश्न विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं-

(i) ज्ञान का मूल स्रोत क्या है और इसकी उत्पत्ति कैसे होती है?

(ii) ज्ञान का स्वरूप क्या है, इसकी वैधता या प्रमाणिकता का आधार क्या है?

(iii) ज्ञान की सीमा क्या है?

लॉक इन प्रश्नों क विवेचन अनुभववाद के प्रसंग में करते हैं। अनुभववाद, बुद्धिवाद का विरोधी सिद्धांत है। लॉक बुद्धिवादियों की मान्यताओं का खण्डन करते हुए कहते हैं कि कोई भी प्रत्यय जन्मजात नहीं होता। जन्म के समय मन एक सफेद पेपर या स्वच्छ प्लेट या रिक्त कमरे के समान होता है; जिसमें ज्ञान रूपी प्रकाश का प्रवेश इन्द्रिय अनुभव के माध्यम से होता है। स्पष्ट है कि यथार्थ ज्ञान प्राप्ति का एकमात्र अनुभव है, बुद्धि नहीं।

अनुभव से ज्ञान की प्राप्ति दो रूपों में होती है- 1. संवेदन, 2. स्वसंवेदन। इसमें संवेदन पहले होता है और स्वसंवेदन इसके बाद होता है।

निष्कर्ष

संवेदन ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त बाह्य ज्ञान है। यह ज्ञान का प्राथमिक स्रोत है। स्वसंवेदन से आंतरिक जगत के भावों या संवेगों का ज्ञान प्राप्त होता है। विश्व का समस्त ज्ञान इन्हीं संवेदनाओं, स्वसंवेदनाओं या दोनों के संयोग से होता है।

प्र. 'संवेद्य वस्तुएं केवल वे होती हैं जिन्हें अव्यवहित अथवा अपरोक्ष रूप से इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष किया जा सके।' उपरोक्त वाक्य के सन्दर्भ में बर्कले की ज्ञानमीमांसा की व्याख्या कीजिए। *(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)*

उत्तर: बर्कले के अनुसार भौतिक पदार्थ की धारणा तीन बातों पर निर्भर करती है- अमूर्तबोधन, प्राथमिक और गौण गुणों का भेद, तथा प्रत्ययों के बाह्य कारण के आधार पर। बर्कले ने इन तीनों का खण्डन किया है। भौतिक पदार्थ एक अमूर्त विचार है, अमूर्तबोधन एक असंगत प्रक्रिया है जिसमें किसी एक गुण को वस्तुओं से अलग करके अमूर्त प्रत्यय की रचना करते हैं। परन्तु अमूर्त प्रत्यय का सत्तात्मक आधार नहीं होता।

4

कांट: संश्लेषात्मक प्रागनुभविक निर्णय की संभवता

प्र. इमैन्युएल काण्ट के अनुसार अंत:प्रत्यक्ष क्या है? उनके द्वारा प्रस्तुत देश तथा काल के प्रागनुभविक प्रतिपादन के सन्दर्भ में विवेचना कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: कांट के अनुसार देश और काल हमारी संवेदन शक्ति के दो प्रागनुभविक आकार हैं ,जिनमें से ढलकर संवेदनाएं प्रत्यक्ष का रूप धारण करती हैं। इन प्रत्यक्षों को हमारी तर्क बुद्धि अपनी कोटियों द्वारा व्यवस्थित करके ज्ञान का रूप देती है। अत: कांट के अनुसार ज्ञाता से स्वतंत्र या निरपेक्ष रूप में देश और काल की सत्ता नहीं है।

साधारणत हम सोचते हैं कि देश और काल विश्व में विद्यमान वस्तुनिष्ठ तत्व हैं। न्यूटन का ऐसा ही मत था। इसके विपरीत लाइवनित्स के अनुसार देश और काल की स्वतंत्र सत्ता नहीं है। ह्यूम का मत है- देश और काल का हमें प्रत्यक्ष नहीं होता। ह्यूम के अनुसार देश और काल प्रत्ययों में साहचर्य स्थापित करने की मन की प्रवृत्ति मात्र है। कांट का मन इन सबसे भिन्न है। कांट देश और काल की दो तरह से व्याख्या करते हैं-

(1) तत्वमीमांसात्मक व्याख्या,

(2) अनुभवालीत व्याख्या।

तत्वमीमांसात्मक व्याख्या के अन्तर्गत कांट दो बातें स्पष्ट करना चाहते हैं-

(i) देश और काल संवेदन शक्ति के प्रागनुभविक आकार हैं।

(ii) देश और काल शुद्ध प्रत्यक्ष प्रत्यय नहीं।

देश और काल की प्रागनुभविकता सिद्ध करने के लिए कांट निम्न तर्क देते हैं-

(a) देश और काल का ज्ञान हमें अनुभव से नहीं मिलता। आनुभविक ज्ञान की यह विशेषता है कि इसका विरोधी या विपरीत सोचा जा सकता है; किन्तु देश और काल के विषय में ऐसा संभव नहीं है। देश त्रिविमीय होता है किन्तु इसे किसी अन्य रूप में, तीन से कम या अधिक विभाओं से संपन्न करके सोचना संभव नहीं है। फिर, काल का क्रम अपतिवर्ती होता है। काल क्रम को प्रतिवर्ती रूप में सोचा ही नहीं जा सकता। इस प्रकार अनुभवगम्य वस्तुओं और घटनाओं के विपरीत देश और काल के स्वरूप को अन्यथा मानकर सोचा नहीं जा सकता, इससे सिद्ध होता है कि ये वस्तुनिष्ठ नहीं, बल्कि प्रागनुभविक है।

(b) देश और काल इसलिए भी प्रागनुभविक हैं, क्योंकि इनके अभाव की कल्पना नहीं की जा सकती। देश और काल को हम बिना वस्तुओं और घटनाओं के सोच सकते हैं, परंतु वस्तुओं और घटनाओं को देश और काल के बिना नहीं सोच सकते।

2. अनुभवातीत व्याख्या के अन्तर्गत कांट यह दिखाना चाहते हैं कि देश और काल की प्रागनुभविकता पर ही कतिपय संश्लेषणात्मक प्रागनुभविक विज्ञान निर्भर करते हैं, परन्तु हमारे ज्ञान में अनि के पश्चात वे तत्काल ही प्रागनुभविक हो जाते हैं। इसलिए देश काल संबंधी निर्णय सार्वभौम एवं अनिवार्य होते हैं। यहां कांट का मानना है कि यद्यपि देश काल के प्रत्यक्ष मानसिक हैं, किन्तु वे काल्पनिक नहीं हैं। इनमें वस्तुनिष्ठ वैधता पायी जाती है। कांट के अनुसार ज्यामिति का संबंध देश से है, अंकगणित का संबंध काल से है और गति विज्ञान देश और काल दोनों पर निर्भर है।

चूंकि देश और काल सभी मनुष्यों में एक समान रूप से पाये जाते हैं, जिनके द्वारा सभी संवेदनाएं ग्रहण की जाती की जाती है, अत: इनसे जो ज्ञान होगा, वह सार्वभौम होगा। फिर ये शुद्ध प्रत्यक्ष है, अत: इन पर आधारित ज्ञान संश्लेषणात्मक भी होगा। इसी आधार पर कांट गणितीय ज्ञान की व्याख्या करते हैं।

निष्कर्ष

स्पष्ट है कि कांट के मन में देश और काल परमार्थ पदार्थों के गुण नहीं है। इनकी हसमे स्वतंत्र सत्ता नहीं हैं। हम देश और काल में नहीं, बल्कि देश और काल हमसे है, अत: पारमार्थिक दृष्टि से देश और काल आत्मनिष्ठ है। परन्तु इनकी आत्मनिष्ठता ऐसी है कि ये सामान्य रूप से सभी ज्ञाताओं में पाये जाते हैं। इसलिए व्यावहारिक जीवन में हमें देश और काल वस्तुनिष्ठ प्रतीत होते हैं। अत: कांट का देश काल सिद्धांत केवल प्रत्यक्ष जगत की व्याख्या करना है। परमार्थ पर इसका आरोप नहीं किया जा सकता। कांट का यह मत अद्वैत वेदान्त से साम्य रखता है।

प्र. शुद्ध तर्कबुद्धि की भ्रमात्मक प्रवृत्तियों की व्याख्या के लिए काण्ट किस प्रकार विप्रतिषेधों की रचना करते हैं? काण्ट द्वारा प्रस्तुत विप्रतिषेधों की व्याख्या एवं परीक्षा कीजिए।
(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: कांट हमारी ज्ञान शक्ति के तीन आधार मानते हैं-

(1) संवेदन-शक्ति,

(2) बुद्धि,

(3) प्रज्ञा।

संवेदन-शक्ति ज्ञान की सामग्री या उत्पादन प्रस्तुत करती है और बुद्धि उन्हें आकार प्रदान करती है। संवेदन-शक्ति अपने प्रागनुभाविक आकारों-देश और काल के माध्यम से बाहर से संवेदनाओं को ग्रहण करके उन्हें प्रत्यक्ष का रूप देती है।

5

हीगल

प्र. जार्ज विल्हेल्म हीगल के दर्शन में द्वन्द्वात्मक विधि क्या है? निरपेक्ष के फलीभूतिकरण में यह विधि किस प्रकार सहायक है? विवेचना कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: हीगल द्वारा प्रतिपादित द्वंद्वात्मक विधि का पाश्चात्य दर्शन के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान है। द्वंद्वात्मक विधि के आधार पर हीगल निरपेक्ष विज्ञान के विकास की व्याख्या करते हैं। इस प्रकार द्वंद्वात्मक विधि निरपेक्ष विज्ञानवाद के ही अंग के रूप में प्रदर्शित होती है। हीगल के अनुसार द्वंद्वात्मक विधि से होने वाला यह विकास तार्किक है, समय या काल के अन्तर्गत होने वाला विकास नहीं है।

- द्वंद्वात्मक विकास हीगल के दर्शन का सर्वथा नवीन सिद्धांत नहीं है; बल्कि इसका संकेत जीनों, प्लेटो, कांट, फिक्टे आदि पूर्ववर्ती दार्शनिक के मत में मिलता है।
- फिक्टे ने द्वंद्वात्मक विधि का प्रयोग लगभग हीगल के समरूप ही किया था। परन्तु फिक्टे ने इस विधि द्वारा सर्वोच्च सत्ता के रूप में संकल्प को स्थापित किया था। वहीं हीगल ने चैतन्य या विचार को। हीगल के अनुसार परमतत्व ज्ञान स्वरूप, विचार स्वरूप या चैतन्य स्वरूप है। स्पष्ट है कि हीगल ने द्वंद्वात्मक विकास से निरपेक्ष विज्ञान के विकास की व्याख्या में एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया।
- द्वंद्वात्मक विधि को वाद, प्रतिवाद एवं समन्वय इन तीन सोपानों में प्रस्तुत किया जाता है। इसके अनुसार एक का प्रतिवादन लेता है (वाद), इसका विरोधी प्रतिपादित होता है (प्रतिवाद) और फिर दोनों का समन्वय होता है (समन्वय), समन्वय पुनः वाद का रूप होता है, इसका प्रतिवादी आता है और फिर उनका समन्वय होता है, फिर समन्वय का वाद बनता है। इस प्रकार खण्डन मण्डन के इसी क्रम में विकास चलता रहता है। वाद, प्रतिवाद, समन्वय, पुनः वाद, प्रतिवाद इसे ही द्वंद्वात्मक पद्धति कहते हैं।
- निरपेक्ष विज्ञान का विकास इसी द्वन्द्वात्मक विधि से होता है। निरपेक्ष विज्ञान पहले अमूर्त था। फिर मूर्त बना और तत्पश्चात् मूर्त और अमूर्त का समन्वय बना।
- विकास का यह त्रिक रूप परम तत्व की व्याख्या करता है। तथा परम तत्व से विश्व की उत्पत्ति की भी व्याख्या करता है। यहां एक और अनेक की व्याख्या का समाधान हीगल विरोध के समन्वय सिद्धांत के द्वारा करते हैं। यह समन्वय सम्पक्ष में होता है।
- सत्ता का विज्ञान सृष्टि में सबसे महत्वपूर्ण विज्ञान है। सत्ता का विज्ञान हीगल भाव, अभाव और सम्भवन के त्रिक से दर्शाते हैं।
- यहां भाव पक्ष है, अभाव प्रतिपक्ष है और सम्भवन पक्ष तथा प्रतिपक्ष का समन्वय है। इस प्रकार भाव, अभाव और सम्भवन हीगल के दर्शन का प्रथम त्रय है। यहां भाव और अभाव दोनों में विरोध भी है और फिर दोनों एक भी हैं।
- ये दोनों एक है, क्योंकि अभाव को भाव पर विचार करने के फलस्वरूप ही प्राप्त किया गया है। सम्भवन में भाव और अभाव का विरोध समाप्त हो जाता है। यहां भेद और अभेद दोनों रूपान्तरित होकर एक नया पक्ष बना लेते हैं।

प्र. हीगल की द्वन्द्वात्मक विधि की विवेचना कीजिए। उनकी द्वन्द्वात्मक विधि किस प्रकार उन्हें निरपेक्ष प्रत्ययवाद की ओर ले जाती है, इसकी व्याख्या कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: हीगल द्वारा प्रतिपादित द्वन्द्वात्मक विधि का पाश्चात्य दर्शन के इतिहास में एक विशिष्ट स्थान है। द्वन्द्वात्मक विधि के आधार पर हीगल निरपेक्ष प्रत्ययवाद की व्याख्या करते हैं। इस प्रकार द्वन्द्वात्मक विधि निरपेक्ष प्रत्ययवाद के ही अंग के रूप में प्रदर्शित होती है।

- हीगल के अनुसार, द्वन्द्वात्मक विधि से होने वाली यह विकास तार्किक है। समय या काल के अन्तर्गत होने वाला विकास नहीं है।
- द्वन्द्वात्मक विकास हीगल के दर्शन का सर्वथा नवीन सिद्धांत नहीं है बल्कि इसका संकेत जीनो, प्लेटो, कांट फिक्टे आदि पूर्ववर्ती दार्शनिकों के मत में मिलता है।
- हीगल के अनुसार, परमत्व ज्ञान स्वरूप, विचार स्वरूप या चैतन्य स्वरूप है। स्पष्ट है कि हीगल ने द्वन्द्वात्मक विकास से निरपेक्ष विज्ञान के विकास की व्याख्या में एक नवीन दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है।
- द्वन्द्वात्मक विधि को वाद, प्रतिवाद एवं समन्वय इन तीन सोपानों में प्रस्तुत किया जाता है। इसके अनुसार एक का प्रतिपादन होता है (वाद), इसका विरोधी प्रतिपादित होता है (प्रतिवाद) और फिर दोनों का समन्वय होता है। समन्वय पुनः वाद का रूप लेता है उसकी प्रतिवादी आता है और फिर उनका समन्वय होता है फिर समन्वय का वाद बनता है। इस प्रकार खण्डन मण्डन के इसी क्रम में विकास चलता रहता है। वाद, प्रतिवाद, समन्वय, पुनः वाद प्रतिवाद इसे ही द्वन्द्वात्मक पद्धति कहते हैं।
- निरपेक्ष प्रत्ययवाद का विकास इसी द्वन्द्वात्मक विधि से होता है। निरपेक्ष प्रत्ययवाद पहले अमूर्त था फिर मूर्त बना और तत्पश्चात् मूर्त और अमूर्त का समन्वय बना।

द्वितीय प्रश्न-पत्र

सामाजिक एवं राजनैतिक दर्शन

1 सामाजिक एवं राजनैतिक आदर्श

प्र. आर. नोजिक द्वारा प्रतिपादित न्याय के वितरणात्मक सिद्धान्त की आलोचनात्मक विवेचना कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: नोजिक का न्याय सिद्धांत 'योग्यतावादी न्याय सिद्धांत' कहलाता है। नोजिक कल्याणकारी राज्य के आदर्शों में विश्वास नहीं रखता और राज्य के हस्तक्षेप को संशय की दृष्टि से देखते हैं।

- नोजिक न्याय के ऐतिहासिक सिद्धांत का समर्थन करते हुए कहते है कि यदि अतीत में कोई गलत संपत्ति हस्तांतरण हुआ है तभी उसे बदला जाये। सही ढंग से हुए संपत्ति हस्तांतरण को राज्य द्वारा छेड़ना गलत होगा।
- वे स्पष्ट कहते हैं कि लोगों की अतीत की परिस्थितियों एव कार्यों के आधार पर वर्तमान स्थिति भिन्न-भिन्न हो सकती है। समाज में उत्पादन के स्तर पर जो असमानताएं पायी जाती हैं, इसे वितरण के स्तर पर बदलना विनाशकारी होगा। इस प्रकार नोजिक राज्य के समस्तकल्याणकारी कार्यक्रम को अवैध बताते हैं। क्योंकि राज्य द्वारा व्यक्ति के संपदा के अधिकारों में हस्तक्षेप का अर्थ व्यक्ति के अधिकारों का उल्लंघन होगा।
- नोजिक के अनुसार, कोई संपत्ति का अधिग्रहण तभी गलत होगा जब वह दूसरों की स्थिति पहले से खराब कर दें। उदाहरणार्थ-नोजिक का कहना है कि कोई यदि प्राणरक्षक दवा बनाकर महंगे दाम पर बेंचे तो यह उचित है, किन्तु दूसरों को वैसी दवा न बनाने दे, यह अनुचित होगा।
- इस प्रकार नोजिक न्याय की स्थापना हेतु निम्न बातों को रखते हैं-
  - (i) न तो राज्यविहिन स्थिति अच्छी है और न ही एक ऐसा राज्य अच्छा है जो संपत्ति का पुनर्वितरण करे।
  - (ii) राज्य को रात्रि प्रहरी के रूप में एवं न्यूनतम राज्य के रूप में होना चाहिए।
  - (iii) नोजिक के अनुसार दरिद्रहीन या बंचित लोग अपनी मदद स्वयं करें अन्यथा उन्हें अमीरों की दया पर खैराती व्यवस्था पर निर्भर होना पड़ेगा।
  - (iv) योग्यतावादी के समर्थन के क्रम में नाजिक का कहना है कि जिसके पास योग्यता होगी, वह वस्तु एवं सुविधाओं को पायेगा।
- स्पष्ट है कि कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को पूरी तरह नकारते हुए नोजिक खुली बाजार व्यवस्था के प्रतिस्पर्धात्मक समाज को न्यायपूर्ण समाज के रूप में प्रस्तुत करते हुए दिखाई देते हैं।

प्र. रूसो किस प्रकार प्राकृतिक एवं कृत्रिम असमानता में भेद करते हैं? व्याख्या कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: रूसी ने दो प्रकार की असमानताओं के अस्तित्व का उल्लेख किया है- प्राकृतिक और कृत्रिम।

- प्राकृतिक का तात्पर्य किसी की स्वास्थ्य स्थितियों, आयु या शारीरिक विशेषताओं से उत्पन्न असमानताओं से है। दूसरी और कृत्रिम असमानता वह है जो मनुष्य द्वारा स्थापित की जाती है। इन दो साामजिक असमानताओं में से प्राकृतिक असमानताएं अनुवांशिक है और इन्हें रोका नहीं जा सकता जबकि कृत्रिम असमानताएं अप्राकृतिक है और इन्हें रोका जा सकता है।
- असमानता के इर्द-गिर्द अपने विचारों को सामने रखने के लिए रूसो ने एक विचार प्रयोग, प्रकृति की स्थिति का उपयोग किया। नतीजन, उनके द्वारा प्रतिपादित विचार ऐतिहासिक रूप से सटीक नहीं है।
- प्रयोग एक सैद्धांतिक कल्पना है जिसका उद्देश्य आधुनिक मनुष्य की उत्पत्ति को समझना है, जैसा की वह अभी है।
- रूसो के अनुसार एक प्राकृतिक मनुष्य है जो अनिवार्य रूप से मजबूत है और अपने आस-पास के जानवरों की तुलना में अधिक व्यवस्थित है। यह नैतिक ज्ञान से वंचित है और इस बात से अंजान है कि क्या अच्छा है क्या बुरा है।
- वह अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए जीता है, अर्थात भोजन, संभोग और आराम-जिसे वह आसानी से संतुष्ट कर सकता है। वह सीधा है और उसके पास जो कुछ भी है उससे खुश है, जबकि सभ्य व्यक्ति स्वार्थ से भरा होता है। प्राथमिक मनुष्य की विशेषता दया और सहानुभूति है।

प्र. क्या अमर्त्य सेन की न्याय की अवधारणा रॉल्स के न्याय के सिद्धान्त का एक परिष्कृत रूप है? विवेचना कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)

उत्तर: जॉन रॉल्स के अनुसार न्याय सिद्धांत का उद्देश्य प्रक्रिया या नियमों की खोज होनी चाहिए। यदि प्रक्रिया या नियम निष्पक्ष एवं न्यायपूर्ण हैं तो परिणाम भी न्यायपूर्ण होगा। अत: रॉल्स ने निष्पक्षता पर आधारित प्रक्रिया या नियमों की खोज को अपने न्याय सिद्धांत का केन्द्रबिन्दु माना है।

2

प्रभुसत्ता

प्र. क्या ऑस्टिन का संप्रभुता का सिद्धान्त प्रजातंत्र के साथ संगत है? विवेचना कीजिए। *(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2021)*

उत्तर: ऑस्टिन ने अपने संप्रभुता संबंधी विचारों का प्रतिपादन अपनी पुस्तक 'लेक्चर्स ऑन जूरिसप्रूडेंस' में किया है।

- ऑस्टिन सम्प्रभुता को कानून का स्रोत मानते हैं। वे संप्रभुता को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि-"यदि कोई निश्चित श्रेष्ठ व्यक्ति, जो ऐसे ही किसी अन्य श्रेष्ठ व्यक्ति की आज्ञा पालन करने का आदि नहीं है, समाज के बहुत बड़े भाग से अपनी आज्ञा का पालन सहज रूप से करा लेता है तो वह निश्चित श्रेष्ठ व्यक्ति प्रभुसत्ताधारी है और वह समाज, राजनीतिज्ञ व स्वतंत्र समाज है।
- कानून एक श्रेष्ठ व्यक्ति द्वारा निम्न व्यक्ति को दिया जाने वाला आदेश है। समाज के सभी अन्य सदस्यों की स्थिति पराधीनता अथवा पराश्रितता की है। प्रत्येक कानून का प्रत्यक्ष अथवा निर्माता प्रभुसत्ताधारी है।"

दी गई परिभाषा से निम्न निष्कर्ष निकालता है।

1. प्रत्येक राज्य में ऐसा निर्दिष्ट उच्चतर मनुष्य होता है। जिसकी आज्ञा समाज के बहुसंख्यक नागरिक स्वभावत: मानते हैं।
2. यह उच्चतर मनुष्य जो कुछ भी आदेश देता है वही कानून होता है और उसके आदेशों के बिना कोई कानून नहीं बन सकता।
3. इस उच्चतर मनुष्य की शक्ति जिसे संप्रभुता कहते हैं, अविभाज्य है। ऑस्टिन का कहना है कि प्रभुसत्ता को विभिन्न समुदायों में विभाजित नहीं किया जा सकता।
4. यह संप्रभु परमपूर्ण है और इस पर प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता।

प्र. उदयन किस प्रकार कार्यात्, आयोजनात्, धृत्यादे: और श्रुते: के द्वारा ईश्वर के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं? विवेचन कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2019)

उत्तर: नैयायिक उदयनाचार्य ने अपने ग्रंथ 'न्याय-कुसुमाग्जलि' में ईश्वर के अस्तित्व की सिद्धि के उपरोक्त श्लोक प्रस्तुत किये हैं-

(i) कार्यात्- जग्त्, एक कार्य है और कारण सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक कार्य की भौति इस कार्य के लिए भी कारण होना चाहिए। जगत का उपादानकारण परमाणु है। प्रश्न है निमित्त कारण कौन है? ईश्वर ही यह निमित्त कारण है।

(ii) आयोजनात- परमाणु जगत के उपादान कारण हैं किन्तु जड़, तथा निष्क्रिय होने के कारण वे खुद परस्पर व्यवस्थित नहीं हो सकते। प्रश्न है कि जगत में विद्यमान व्यवस्था परमाणुओं के माध्यम से कौन स्थापित करता है? यह व्यवस्थापक ईश्वर ही है।

(iii) धृत्यादे:- जगत तभी बना रह सकता है जब उसे धारण करने वाली कोई सत्ता विद्यमान हो। प्रश्न है कि जगत को कौन धारण तथा विनष्ट करता है? यह ईश्वर ही है।

(iv) पदात्- भाषा जिन पदों के माध्यम से कार्य करती है, वे निश्चित अर्थों से शुक्ल होते हैं। प्रश्न है कि पदों में अर्थ की यह क्षमता कहां से आती है? नैयायिकों के अनुसार ईश्वर ही पदों में यह क्षमता भरता है।

(v) प्रत्ययत:- प्रश्न है कि वेदों के रचनाकार कौन है? चूंकि वेद शाश्वत ज्ञान व सत्य के प्रतिपादक हैं, इसलिए उनका रचनाकार वही हो सकता है जो सर्वज्ञ तथा नित्य हो। यह रचनाकार ईश्वर ही है।

(vi) श्रुते:- वेद प्रामाणिक रचनाएं हैं, अत: उनमें वर्णित ज्ञान शाब्दी प्रमा है। वेदों में ईश्वर के अस्तित्व का उल्लेख किया गया है, जिससे सिद्ध होता है कि ईश्वर की सत्ता है।

उदयनाचार्य के ईश्वर के सिद्धि के तर्कों पर अनेक आक्षेप लगाये गये, फिर भी न्याय दर्शन का योगदान यह अवश्य है कि उसने ईश्वर के अस्तित्व के सम्बन्ध में लगभग उन सभी तर्कों को प्रस्तुत किया है, जिनकी चर्चा पश्चिमी दर्शन में की जाती है।

प्र. चर्चा कीजिए कि ऑस्टिन की संप्रभुता की संकल्पना कौटिल्य की संप्रभुता की संकल्पना के साथ कहां तक मेल खाती है। *(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2019)*

उत्तर: 16वीं से 19वीं सदी तक के विचारकों की मूल-समस्या राज्य को धर्म, परम्पराओं और सामन्तों के प्रभाव से मुक्त करना था। इस संदर्भ में जो सिद्धान्त दिये गये उनमें राज्य की सत्ता को सर्वोच्च माना गया। इस तरह के सिद्धान्तों को एकलवादी सिद्धान्त कहा गया। इनमें ऑस्टिन का सिद्धान्त श्रेष्ठतम माना जाता है।

ऑस्टिन और कौटिल्य के संप्रभुता के सिद्धान्त में निम्न समानता है-

(i) दोनों एकलवादी हैं अर्थात् कौटिल्य ने राज्य को संप्रभु माना, ऑस्टिन भी राज्य को तथा सम्पूर्ण शक्ति संप्रभु को दी है।
(ii) दोनों लौकिक संप्रभुता में विश्वास करते हैं न कि अलौकिक सत्ता में।
(iii) पूर्णसत्तावाद में विश्वास अर्थात् राज्य किसी अन्य संस्था से नियंत्रित नहीं है।

3

व्यक्ति एवं राज्य

प्र. जातिगत भेदभाव के निर्मूलन पर गांधी के विचारों का समालोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: गांधी जी परंपरा से चली आ रही वर्ण व्यवस्था के समर्थक थे। वर्ण व्यवस्था से उनका आशय श्रम के विभाजन से था। इसलिए वे समाज में व्यवस्था को बनाये रखने के लिए चर्तुवर्ण व्यवस्था को आवश्यक मानते थे। वर्ण व्यवस्था को वे कर्म के अनुसार परिवर्तनीय मानते थे। क्योंकि उनका मानना था यदि पुत्र पिता के व्यवसाय को अपनायेगा तो प्रतियोगिता एवं विकास में कमी आयेगी उनका स्पष्ट मानना था कि जब वर्ण व्यवस्था अस्तित्व में आयी थी तब ऊंच नीच का विचार नहीं था। इस विश्व में न कोई ऊंचा है न कोई नीचा।

- यह मायने नहीं रखता कि प्राचीन समय में समाज में क्या था। ऊंच-नीच का विचार था या नहीं परन्तु आज कोई भी समाज ऊंच-नीच के विचार को स्वीकार नहीं करेगा। मानवीय स्तर पर सभी मनुष्य समान हैं। संपत्ति, बुद्धि आदि के स्तर पर असमानता हो सकती है। वर्ण व्यवस्था को श्रम के विभाजन मानने के कारण ही गांधी जी यह मानते थे कि हिन्दू धर्म अभी तक अक्षुण रूप से बचा हुआ है।
- गांधी जी सामाजिक समूहों का चार भागों में बटबारा स्वभाविक और आवश्यक मानते थे। परन्तु इसको आधार बनाकर जाति के रूप में अंतहिन विभाजन की प्रक्रिया को सबसे बड़ी सामाजिक बुराई मानते थे। कारण समाज में ऊंच-नीच की भावना प्रवेश करती है। जिसका चरम रूप छुआ -छूत की भावना है। अपने सामाजिक सुधार के प्रयासों में सबसे पहले वे अस्पृश्यता पर प्रहार करते थे। उनका मानना था कि एक बार यदि अस्पृश्यता समाप्त हो जायेगी तो जाति व्यवस्था अपने आप समाप्त हो जायेगी।
- धर्म के इस विकृत रूप का गांधी विरोध करते थे। जहां धर्म का मतलब खानपान और ऊंच-नीच का भेद है। व्यक्ति की उच्चता और नीचता की एकमात्र कसौटी वे चरित्र को मानते थे। ऐसे धर्म ग्रन्थों को वे अस्वीकार करने को तत्पर थे जो व्यक्ति को उसके जन्म के कारण हिन अथवा अछूत कहते थे। गांधी जी के अनुसार यह भगवान को सत्य मानने से इंकार करना है।
- गांधी जी एक राष्ट्रवादी नेता थे। अंग्रेज विचारकों द्वारा इस मिथ्या धारणा का प्रचलन कि भारत कभी एक राष्ट्र नहीं रहा यहां के लोग सदैव आपस में बंटे रहे। समाज विघटन का शिकार रहा।
- इस चुनौति और आरोप के विरोध में गांधी ने यह दृढ़ निश्च किया कि भारत को वे एक संगठित राष्ट्र का रूप देंगे। भारत के सभी लोगों को एक साथ खड़ा करेंगे- चाहे अछूत हो, हिन्दू हो, मुस्लिम हो। गांधी पहले राष्ट्रवादी नेता थे जिन्होंनें सबके लिए वास्तविक स्वराज्य की बात की वे यह नहीं मानते थे कि अस्प्रश्यता से मुक्ति से पहले गुलामी से मुक्ति हो सकती है।
- उनका विश्वास था कि जिस दिन इस बुराई के संदर्भ में भारत अपनी चितवृत्ति बदल देगा उस दिन से संसार में कोई भी जाति नहीं है जो उसके स्वराज के अधिकार को स्वीकार न कर सके। इसलिए वे तथाकथित अंत्यन अछूत या पंचमजाति को समस्त अधिकार देने के हिमायती थे।

निष्कर्ष

गांधी का मुख्य उद्देश्य भारत की आजादी था इसलिए वे समाज के समस्त समूहों को जोड़कर राष्ट्रीय आंदोलन को मजबूत और संगठित करना चाहते थे। इस प्रक्रिया में सबसे पहली जरूरत जातिगत भेदभाव की समाप्ति मानते थे।

प्र. क्या अप्रतिबन्धित अधिकारों की अवधारणा अनिवार्यतः अव्यवस्था में परिणित होती है? समालोचनात्मक परीक्षण कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: सामाजिक-राजनीतिक दर्शन में व्यक्ति-राज्य संबंध की विवेचना के क्रम में तीन नैतिक प्रश्न उभरते हैं-

1. हमें क्या प्राप्त होना चाहिए → अधिकार
2. हमें क्या करना चाहिए → कर्तव्य का पालन
3. कार्य संपादन की जिम्मेदारी किसकी होनी चाहिए और कैसे निर्धारित होनी चाहिए → उत्तरदायित्व का प्रश्न

- व्यक्ति की छिपी हुई संभावनाओं को साकारित करने हेतु, संभावनाओं को साकारित करने हेतु, सम्मानपूर्वक जीवन यापन करने के लिए, समाज को सुव्यवस्थित रूप से संचालन हेतु नैतिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उत्थान हेतु अधिकारों का होना आवश्यक है।
- अधिकार कुछ कार्यों को करने की स्वतंत्रता का नाम है। लॉस्की के अनुसार अधिकार सामाजिक जीवन की वे स्थितियां हैं जिसके बिना सामान्य रूप से कोई व्यक्ति अपने जीवन का सर्वोच्च विकास नहीं कर सकता।

4

शासन के प्रकार

प्र. व्यक्तिवाद तथा सार्वभौमिक मताधिकार के युग में राज-निकाय (बॉडी-पॉलिटिक) में जाति की क्या भूमिका है? विवेचना कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: संस्कृति और सभ्यता के निर्माण का पहला साहित्यिक साक्ष्य वैदिक साहित्य है। इस वैदिक साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद के पुरुष सुक्त में समाज के वर्गीय विभाजन को मिथकीय रूप में या पराभौतिक रूप में प्रस्तुत किया गया है। जिसमें यह माना गया है कि आदि पुरुष ने सामाजिक व्यवस्था के लिए अपने आप को नष्ट कर दिया और अपने शरीर के विभिन्न भागों से विभिन्न सामाजिक वर्गों का सृजन किया।

- आम धारणा में वर्ण से आशय हिन्दू समाज के चार वर्गों में विभाजन से लिया जाता है। वर्ण का शाब्दिक अर्थ रंग है इसका प्रयोग मुख्यत: आर्यो और अनार्यो के बीच भेद करने के लिए किया गया था। परन्तु कालान्तर में यह शब्द सामाजिक व्यवस्था के वर्गीय विभाजन के लिए रूढ़ हो गया और सतपथ ब्राह्मण में आकर चार वर्गों को चार वर्णों के रूप में जाना जाने लगा।
- आदिपुरुष के शरीर से जिस तरह विभिन्न सामाजिक वर्गों की उत्पत्ति हुई इसी तरह कालांतर में उनकी सामाजिक स्थिति के क्रम का निर्धारण हुआ। आरंभिक अवस्था में यह विभाजन व्यवसाय और कर्म पर आधारित था अर्थात एक व्यक्ति अपना व्यवसाय चुनने के लिए स्वतंत्र था।
- उसके व्यवसाय के आधार पर उसकी सामाजिक स्थिति या महत्व का निर्धारण नहीं होता था। परन्तु परवर्ती दौर में व्यवसायों का श्रेणीक्रम निर्धारित होने लगा। यही प्रक्रिया जातियों की उत्पत्ति का आधार बनती है। व्यवसायिक विविधता के कारण अनेक जातियों एवं उपजातियों की उत्पत्ति हुई।
- जाति के साथ विभेद अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है। जाति एक पृथक समुदाय है जिसके सदस्य अपनी जाति के भीतर वैवाहिक संबंधों एवं आनुवंशिक व्यवसाय या कतिपय कर्तव्य के जरिए आपस में बंधे रहते हैं तथा हम लोग जातियों से पृथकता एवं पहचान को बनाये रखने की निरंतर कोशिश करते हैं। इसके अतिरिक्त जाति व्यवस्था की अवधारणा सामाजिक ऊंच-नीच से जुड़ी हुई है।
- यह ऊंच-नीच 'शुद्धता' 'अशुद्धता' की धारणा से अर्थात् ऊंच-नीच की भावना जाति व्यवस्था का केन्द्रीय तत्व है। यही केन्द्रीय तत्व विभेद का मूल कारण है।
- असमानता का चरम रूप स्पृश्यता की अमानवीयता में दिखाई पड़ता है इसके अन्तर्गत समाज के एक बड़े समूह को हाशिये पर रख दिया गया और उसे अत्यंज कहा गया। उसकी परछाई उसका स्पर्श अपवित्रकारी माना जाने लगा।
- मानव जीवन के मूलभूत अधिकारों से इसे वंचित कर दिया गया। ये लोग मंदिरों में प्रवेश नहीं कर सकते थे। इसके साथ शिक्षा के अधिकार से पूरी तरह वंचित थे।
- भारतीय राजनीति में जाति सबसे महत्वपूर्ण कारक बन गयी है। जाति चेतना एवं जातिगत संगठनों के उदय ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को बदल दिया है।
- सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार के लागू होने के बाद सभी वर्गों की राजनीति में भागीदारी बढ़ी है। तथा कुछ वर्ग मजबूत बनकर उभरे हैं।
- भारत की चुनावी राजनीति में गति के दो पहलू हैं, पहला जाति के आधार पर प्रतिनिधि चुने जाते हैं, या जाति के आधार पर राजनीतिक दल टिकटों का बंटवारा करते हैं, तथा दूसरा पहलू यह है कि राजनीतिक दलों का आधार, जातियों का समर्थन होता है।

निष्कर्ष

प्रथम पहलू यह दर्शाता है कि जातियों को विधायी निकायों में शामिल किया जा रहा है जबकि दूसरा यह है कि चुनावी सफलता में जातियों की भूमिका अधिक बढ़ गयी है।

प्र. यह सिद्ध करने के लिए कि सम्प्रभुता परमतात्त्विक, निरंतर तथा अविभाजित होनी चाहिए, बोडिन कौन-सी युक्तियां प्रस्तुत करते हैं? क्या बोडिन की सम्प्रभुता की अवधारणा समानता, न्याय तथा स्वतन्त्रता के सामाजिक तथा राजनैतिक आदर्शों के साथ सुसंगत है? समालोचनात्मक विवेचना कीजिए। (सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: संप्रभुता राज्य का निर्माण करने वाले तत्वों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण 21 यही वह तत्व है जो राज्य को समाज के अन्य संगठनों (परिवार, विरादरी, जाति आदि) से अलग करता है।

- संप्रभुता के लिए प्रयुक्त अंग्रेजी शब्द 'sovereignty' लैटिन भाषा के 'superanus' से बना है और इसका अर्थ होता है - श्रेष्ठ या सर्वोच्च शक्ति।

5

राजनैतिक विचारधाराएं

प्र. "सम्पूर्ण स्वतन्त्रता असमानता को जन्म दे सकती है, जबकि व्यवस्था तथा प्रतिबन्ध से अनिवार्यतः स्वतन्त्रता के ह्रास का फलन होता है।" समालोचनात्मक विवेचना कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए मानव प्रारंभ से ही संघर्ष करता रहा है, परन्तु आधुनिक प्रसंग में स्वतंत्रता शब्द का जो प्रयोग किया जा रहा है उसे फ्रांसीसी क्रांति की देन कहा जा सकता है। इस क्रांति ने स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व का संदेश प्रेषित, किया। यह स्वतंत्रता उदारवादी चिंतन का केन्द्रीय तत्व और मूलभूत सामाजिक मान्यता है।

स्वतंत्रता के संबंध में हो प्रमुख दृष्टिकोण हैं - (i) नकारात्मक स्वतंत्रता (ii) सकारात्मक स्वतंत्रता।

(i) नकारात्मक स्वतंत्रता: इसके प्रमुख विचारक जॉन लॉक, डेविड हयूम, ऐंडम स्मिथ, टॉमस पेन, हरबर्ट टपेंबर आदि है। ये विचारक स्वतंत्रता का अर्थ 'लिबर्टी' के मूल शब्द 'लिबर' से ग्रहण करते हैं। लिबर का अर्थ है- बेबनों का न होना अर्थात् बंधनों का अभाव। यहां बंधनों के अभाव का आशय है - स्वतंत्रता किससे है न कि स्वतंत्रता किसके लिए है।

हॉब्स के अनुसार- स्वतंत्रता कानून का मौन है। बर्लिन इसे 'जोर - जबरदस्ती का अभाव मानते हैं। यहां बाधाएं सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, नैतिक सभी प्रकार की मानी गई हैं।

- इन विचारकों का विश्वास था कि अगर व्यक्ति को काम करने की पूरी छूट हो तो वह निजी प्रयास से जीवन में आने वाली कठिनाइयों का सामना कर सकता है। मिल के अनुसार मनुष्य को स्वतंत्रता होनी चाहिए। इसमें राज्य किसी तरह की बाधा नहीं डालें। इन विचारकों का तर्क है कि राज्य का कोई कानून जो प्राकृतिक दशा में मिलने वाले अधिकारों जैसे स्वतंत्रता पर अंकुश लगाता है, न्यायसंगत व मान्य नही हो सकता है।

समालोचना

- स्वतंत्रता केवल बंधनों का अभाव नहीं हैं। बंधनों का अभाव स्वेच्छा 'चारिता की ओर ले जा सकता है।
- मिल द्वारा मनुष्य के व्यक्तिपरक एवं हामाजपरक कार्यों के बीच खीची गई रेखा अव्यवहारिक है।
- नकारात्मक स्वतंत्रता मानव की परिकल्पना एकाकी व्यक्ति के रुप में करती है और उसे सामाजिक संबंधों से जुड़ा नहीं मानती है।

सकारात्मक स्वतंत्रता: इसके प्रमुख विचारक ग्रीन, बोसांके, लास्की, मैकफर्सन, रॉल्स आदि हैं। व्यक्तिवाद पर आधारित पूंजीवाद की बुराइयों और समाजवाद के दबाब में इस सकारात्मक स्वतंत्रता की अवधारणा का विकास हुआ है। यह अवधारणा स्वतंत्रता को समाज, सामाजिक - आर्थिक परिस्थितियों, अधिकार, समानता और न्याय के साथ जोड़ती है। इसमें स्वतंत्रता के नकारात्मक स्वरूप न्याय की खामियों से उबरने का प्रयास दिखता है।

- सकारात्मक स्वतंत्रता प्रतिबंधों के पूर्ण अभाव के बजाएं समुचित प्रतिबंध की बात करता है। साथ ही मनुष्यों के संपूर्ण विकास के अवसर उपलब्ध कराने पर जोर देता है।

समालोचना

- सकारात्मक स्वतंत्रता की अवधारणा में स्वतंत्रता के स्रोत की चर्चा पर ध्यान रखा जाता है। जबकि नकारात्मक स्वतंत्रता की अवधारणा में स्वतंत्रता के क्षेत्र को केवल महत्त्व दिया जाता है।
- सकारात्मक स्वतंत्रता में व्यक्ति की क्षमताओं को विकसित करने पर जोर है और इसमें आने वाली बाधाओं को हटाने पर जोर है।
- कई बार इसके निर्धारण का दायित्व राज्य पर दे दिया जाता है पर ऐसी स्थिति में यह आरोप लगाया जा सकता है कि इससे तानाशाही और अधिनायकवाद कायम हो सकता है।

प्र. मार्क्स के दर्शन के सन्दर्भ में साम्यता (इक्विटि) तथा समानता की अवधारणाओं के बीच अन्तर की व्याख्या कीजिए।

(सिविल सेवा मुख्य परीक्षा, 2022)

उत्तर: मार्क्सवाद समाजावाद का वह रूप है जिसे कार्ल मार्क्स ने प्रस्तुत किया था। समाजवाद के मार्क्सवादी रूप को वैज्ञानिक समाजवाद बाद भी कहा जाता है। क्योंकि उनके द्वारा प्रतिपादित समाजवाद एक काल्पनिक विचारधारा न होकर विधिवत् रूप से प्रतिपादित एक व्यवहारिक दर्शन है।

- इसमें उन परिस्थितियों विस्तृत वर्णन है जिसके माध्यम से निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। यह मार्क्सवाद एक ऐसी वैकल्पिक विचारधारा है जो मानव समाज को इतिहास व भौतिकवाद के साध्यम से समझने का प्रयत्न करता है और इसी आधार पर नये समाज का निर्माण करना चाहता है। मार्क्स समाज को रुपान्तरित कर एक नये मानवोचित सामाजिक व्यवस्था की स्थापना के पक्षधर थे।